हिन्दुस्तानी संगीत में वाद्यों का क्रमिक विकास

डॉ0 प्रीति सिंह
असि0 प्रोफे0, सितार विभाग,
साहूराम स्वरूप महिला महाविद्यालय, श्यामगंज, बरेली
ईमेलः singh-pritising.sitar@gmail.com

Reference to this paper should be made as follows:

डॉ0 प्रीति सिंह

'हिन्दुस्तानी संगीत में वाद्यों का क्रमिक विकास'

Artistic Narration 2020, Vol. XI, No. 1, pp. 40-43

https://anubooks.com/?page_id=6863

सारांश

प्रस्तावना

हिन्दुस्तानी संगीत में वाद्यों का प्रयोग अत्यंत प्राचीन काल से होता चला आ रहा है। प्राचीनकाल के धार्मिक अवशेषों, शास्त्रीय ग्रंथों, वेदकालीन वाद्य निरूपण तथा मोहनजोदड़ों की खुदाई इस तथ्य के प्रमाण है कि वैदिक युग भारीतय संगीत का सबसे प्राचीनतम युग है।

हिन्दुस्तानी संगीत में अनेक प्रकार के वाद्य यन्त्रों का प्रयोग होता है। आदि काल से हमारे यहाँ संगीत में विविध प्रकार के हिन्दुस्तानी वाद्य यन्त्रों का उल्लेख मिलता है। ताल व स्वर दोनों के लिए विभिन्न प्रकार के वाद्य यन्त्रों का निर्माण वैदिक काल में ही हो चुका था।

आर्यों ने अपने रूचि एवं ज्ञान के आधार पर अनेक वाद्य यन्त्रों की नींव ही नहीं डाली, वरन उनका उपयोग कर मनुष्य–जीवन को भौतिक धरातल से ऊँचाा उठाकर संगीत कला को दिव्य तथा अलौकिक जगत में ले जाकर प्रतिष्ठित कर दिया।

नाट्यशास्त्र के 28वे अध्याय में तत–वितत, धन, अवनद्ध एवं सुषिर ये चार प्रकार के वाद्य बताये गये हैं जो सर्वविदित है।

मानव की सभ्यता के विकास के साथ–साथ वाद्यों का विकास भी होता चला आ रहा है। प्राचीन वाद्यों का प्रारम्भिक झप प्राकृतिक था। उनमें सुधार करके समयनुरूप उनका विकास किया गया, चाहे वह वर्तमान प्रचलित वाद्य–सितार, सरोद, विचित्रवीणा, तबला,दलल्बा, शहनाई इत्यादि कोई भी हो, ये सभी वाद्य प्राचीन वाद्यों के विकसित रूप ही है।

ऐसा कहा जा सकता है कि मानव प्रारम्भ से ही अन्य प्राणियों की अपेक्षा कुछ अधिक समझदार था। उसमें सोचने और समझने के लिए बुद्धि थी जिसके बल पर वह धीरे–धीरे असभ्य से सभ्य बना, अपनी इसी विशेषता के कारण उसने सर्वप्रथम कुछ ऐसी ध्वनियाँ सुनी होंगी जिसे अनजाने वही उत्पन्न करता रहता था।

जैसे पृथ्वी पर चलते समय पैर रखने की ध्वनि, अपने नंगे शरीर में हाथ की हथेली अथवा पंजो के मारने की ध्वनि, विशेष रूप से पेट पर, जाँघ पर आदि। लेकिन उसकी ओर भी उसका (मानव) ध्यान बहुत काल के उपरांत ही गया होगा।

प्रारम्भिक तत् वाद्य हमें धनुषाकार में मिलते हैं। इन वाद्यों के आविष्कार में आदिम मनुष्य के धनुष को जन्मदाता कहा जाता है। प्रथम तत वाद्य एकतन्त्री वीणा मानी जाती है। विश्व के आदिम मानव जाति का प्रथम अवनद्ध वाद्य ताली था। संस्कृति की प्रारम्भिक स्थिति में भूमि–दुन्दुभि हिन्दुस्तानी संगीत का प्रथम अवनद्ध वाद्य माना जाता है। इसके बाद नगाड़ा आदि वाद्यों का विवरण ग्रंथों में मिलता है।

सुषिर वाद्यों के अन्तर्गत प्राचीन ग्रंथों में वेणु नामक प्रथम सुषिर वाद्य का उल्लेख मिलता है। जबकि ऐतिहासिक दृष्टि से सबसे प्राचीन वाद्य बांसुरी को माना गया है। इस वाद्य की सरल बनावट को देखकर भी इस बात की पुष्टि होती है कि यह वाद्य आदिम मनुष्य की खोज है। जब मनुष्य का जीवन प्रकृति पर ही निर्भर था तब उसने प्रकृति के साहचर्य में रहकर हवा के द्वारा वृक्षों पर विभिन्न प्रकार की ध्वनि को उत्पन्न होते हुए सुना।

इस प्रकार की ध्वनियों से प्रभावित होकर उसने अपनी संगीत के प्रति चेतना तथा बृद्धि से उसी

आधार पर विभिन्न वाद्यों का निर्माण किया, और वे वाद्य कालान्तर में विकसित होते गये।

आदिम मानव ने वृक्ष के खोहों में वायु के प्रवेश और संचार से होने वाली ध्वनि का अनुकरण करते हुए वेणु को फूंककर उसके निनाद (ध्वनि) का अनुभव किया होगा, तब उसकी आधार पर विभिन्न ध्वनियों को निकालने के लिये पोले बाँस में छिद्र बनाने की कल्पना करके, बाद में उस छिद्र को दबाकर स्वरान्तर निकाले और इसी नियम परम्परा के आधार पर वेणु फिर वंशी इसके पश्चात बाँसुरी, शहनाई आदि वाद्य बनते गये और इन्ही के आधार पर ट्रम्पेट पाइप आदि आधुनिक वाद्य बन रहे है।

इसी प्रकार धनवाद्य के संबंध में प्रथम धनवाद्य झुनझुना रहा होगा। झुनझुना वर्तमान समय में भी उन जनजातियों में प्रचलित है जिन पर आज तक सभ्य समाज का बहुत कम असर पड़ा है। सामान्यतः झुनझुना वह वाद्य है जिसमें कई ठोस टुकड़े एक साथ पिरो दिये जाते है तथा वादक उन्हें हिलाकर बजाता है। यह टुकड़े नारियल, बीज, दाल आदि के हो सकते है। झुनझुना के आधार पर ही संभवतः झांझ, मंजीरा, करताल इत्रूादि धनवाद्य वर्तमान में परिष्कृत होकर प्रचलित है।

इसी क्रम में अवनद्ध वाद्य (चर्मवाद्य) बनाने की कल्पना भी प्रकृति के सानिध्य से ही स्फुटित हुई। मृत शिकार के चर्म को किसी चीज पर तानकर उस पर आघात करने से गंभीर ध्वनि निकलती है। ऐसा अनुभव प्राप्त करके इसी से दुंदभि तथा भूमि दुंदभि जैसे वाद्यों का निर्माण सम्भव हुआ। लकड़ी के खोल को लेकर उस पर चमड़ा तानकर चमड़े को चारो तरफ से बद्धियों से कसकर तनाव लाया जाता था। डमरू, ढक्का तथा दुन्दुभि पहले प्रकार के वाद्य हैं और भूमि–दुन्दुभि दूसरे प्रकार का अवनद्ध वाद्य है। दुन्दुभी–भूमि दुन्दुभि, पणव, दर्द्वर, ढक्का क्रमशः इन्हीं सब वाद्यों के आधार पर धीरे–धीरे नवीन वाद्यों का निर्माण हुआ और वही वाद्य वर्तमान में तबला ढ़ोलक, ढ़फली इत्यादि वाद्यों के रूप में विकसित और प्रचलित है।

तंतवाद्यों के विकास पर दृष्टिपात करते है तो यह ज्ञात होता है कि आदि मानव के लिए धनुष की डोरी की टंकार उनके नित्य अनुभव की चीज रही। डोरी को अंगुली से छेड़ने पर ध्वनि निकलती है, उसका अनुभव वे दैनिक रूप से जीवन में करते रहे। जिसने उन्हें धनुष के आकार वाले एवं टॉट के उपयोग से टंकार की ध्वनि उत्पन्न करने वाले वाद्यों के निर्माण की प्रेरणा दी। आगेचलकर धातु का आविष्कार होने पर तन्त्री के लिए धातु के मार लगाने की प्रथा प्रारम्भ हुई। कोण या मिजराब से बजायी जाने वाले वाद्यों पर सारिकायें या परदे स्थापित करने की प्रथा मध्यकाल में प्रारम्भ हुई। पर्दे वाले वाद्यों को बजाने के लिए अंगुलियों की अपेक्षा कोण का प्रयोग अधिक उपयुक्त सिद्ध हुआ। परवर्ती काल के सभी तेतु वाद्यों का निर्माण इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर हुआ।

इस प्रकार तत, वितत, धन, अवनद्ध एवं सुषिर जो भी वाद्य आधुनिक समय में प्रचलित है चाहे वो सितार, सरोद, विचित्रवीणा, तबला, ढ़ोलक, बाँसुरी, शहनाई, झाँझ, करताल कोई भी वाद्य हो यह सब प्राचीन वाद्यों के ही विकसित रूप है।

संदर्भ ग्रंथ

1. परांजये शरच्चन्द्र श्रीधर, संगीत बोध, पृ **132**।
2. ततं तंत्रीकृतं ज्ञेयम वनद्धं तु पौष्करम्

धनं तालस्तु विज्ञेयः सुषिरो वंश उच्यते।। भरतकृत नाटयशास्त्र–अध्याय 28, श्लोक –02 से उद्धृत, सम्पादक शास्त्री बाबूलाल शुक्ल, पृ0 **3**

3. शर्मा वीना, हिन्दुस्तानी संगीत में तंत्रवसदकों का योगदान, पृ0 **24**।
4. मिश्र लालमणि, भारतीय संगीत वाद्य, पृ0 **405**।
5. मिश्रा अल्ग, भारतीय कंठ संगीत और वाद्य संगीत, पृ0 **11**
6. जायसवाल राधेश्याम, भारतीय सुषिर वाद्यों का इतिहास, पृ0 **34**